सामयिक प्रकाशन

समाज और इतिहास

नवीन शृंखला

9

विकास, विस्थापन और विकल्प

अस्मिता काबरा

नेहरु स्मारक संग्रहालय एवं पुस्तकालय
2014

NMML Occasional Paper

नेहरु स्मारक संग्रहालय एवं पुस्तकालय

© अस्मिता काबरा, 2014
सर्वाधिकार सुरक्षित। लेखिका की लिखित अनुमति के बिना इस प्रकाशन के किसी भी अंश का दोबारा प्रयोग, पुनरोत्पादन किसी भी रुप में नहीं किया जा सकता। इसमें व्यक्त विचार, अर्थनिर्धारण तथा निष्कर्ष पूर्णतः लेखिका के हैं और किसी भी तरह, पूर्णरूपेण अथवा अंशतः, नेहरु स्मारक संग्रहालय एवं पुस्तकालय के विचारों को नहीं दर्शाते।

प्रकाशक

नेहरु स्मारक संग्रहालय एवं पुस्तकालय
तीन मूर्ति भवन
नई दिल्ली–110011
ई.मेल : ddnehrumemorial@gmail.com

आईएसबीएन : 978-93-83650-21-7

मूल्य रुपये 100/- ; यूएस $ 10

पृष्ठ सज्जा और मुद्रण : ए.डी. प्रिंट स्टूडिओ, 1749 बी/6, गोविन्द पुरी, एक्सटेंशन कालकाजी, नई दिल्ली–110019. ई.मेल : studio.adprint@gmail.com

'विकास, विस्थापन और विकल्प'*

अस्मिता काबरा**

परिचय

विस्थापन विश्व भर में काफी बड़ा मुद्दा है और प्रत्येक वर्ष काफी बड़ी संख्या में कई लोग, और खास कर दूरस्थ, ग्रामीण, सीमांत यानि मार्जिनल समुदायों से लोग विस्थापन की वजह से अपनी आजीविका को खो देते हैं। विश्व बैंक, युनाइटेड नेशंस हाई कमीशन आन रेफ्यूज़ीज़ और कई अन्य बड़ी संस्थाओं ने इस समस्या से जूझते हुए लोगों का आंकड़ा पता लगाने की कोशिश की। प्रति वर्ष, विश्व बैंक के अनुसार, एक से डेढ़ करोड़ लोग दुनिया भर में विकास की परियोजनाओं के द्वारा विस्थापित किये जाते हैं। और लोगों के हिसाब से यह आंकड़ा शायद इससे ज्यादा ही हो, कम न हो। 1980 के बाद से यह प्रक्रिया बहुत ज्यादा तेज होती जा रही है। विस्थापन पर शोध करने वाले एक प्रख्यात बुद्धिजीवी, श्री माइकल चर्निया के अनुसार इक्कीसवीं सदी में विकास से जुड़े विस्थापन से प्रभावित लोगों की संख्या प्रतिवर्ष डेढ़ करोड़ है। हिंदुस्तान में विकास हेतु विस्थापन से कितने लोगों के ऊपर असर हुआ है, इस पर काफी शोध हुआ है। अमूमन माना जाता है कि एक से चार करोड़ लोग भारत में स्वतंत्रता के बाद से विस्थापन से प्रभावित हुए हैं और इसमें से एक बहुत बड़ी संख्या का सही पुनर्वास नहीं हुआ है।

विस्थापन के कई कारण हैं। हम सब नर्मदा घाटी में हुए विस्थापन के बारे में जानते हैं, बड़े–बड़े बांध बनना विस्थापन का एक बहुत बड़ा और सब से ज्यादा बहु–चर्चित कारण है। बांध परियोजनाओं के अलावा विकास की कई अन्य गतिविधियाँ भी विस्थापन को जन्म देती हैं। जैसेकि

---

* 6 सितम्बर, 2013 को नेहरु स्मारक संग्रहालय एवं पुस्तकालय, नई दिल्ली में दिए गए व्याख्यान का संशोधित संस्करण।

** अस्मिता काबरा, अम्बेडकर विश्वविद्यालय, दिल्ली के मानव परिस्थिति.विज्ञान ;भ्नउंद म्बवसवहलद्ध विभाग में असोसिएट प्रोफेसर हैं।

सड़कों, नहरों व बिजली की लाइनों का निर्माण, खनन, फैक्ट्रियों व सरकारी भवनों का निर्माण, शहरों में मैट्रो रेल का निर्माण, स्पेशल इकोनॉमिक जोन (SEZ) परियोजनाओं के लिये भूमिग्रहण आदि, जिनकी वजह से भारत में और विश्व के कई अन्य देशों में लोगों का अपनी ज़मीन एवं आजीविका से विस्थापन होता आया है। विस्थापन का एक और प्रमुख कारण, जिस पर मेरा अपना शोध आधारित है, वन्य जीव संरक्षण है। जब जंगलों को जंगली जानवरों के लिए सुरक्षित किये जाने का शासन द्वारा प्रयास किया जाता है, तो इन क्षेत्रों में रहने वाले लोगों को अपने जंगल के घरों से निकाल दिया जाता है।

विस्थापन पर शोध के शुरुआती दौर में भौतिक विस्थापन पर ज्यादा ध्यान दिया गया। अपनी मर्जी के खिलाफ लोगों को एक स्थान से उठा कर दूसरे स्थान पर बसने के लिए मजबूर किया जाना भौतिक विस्थापन कहलाता है। विस्थापन शब्द ही बताता है कि यह स्थान पर निर्धारित परिभाषा है। जब किसी को एक स्थान से उठा कर दूसरे स्थान पर भेजा जाता है, मुआवज़े के साथ या बिना मुआवज़े के साथ, लेकिन उनकी इच्छा के खिलाफ – तो यह स्थान आधारित परिभाषा भौतिक विस्थापन कहलाती है। लेकिन पिछले कई दशकों में कई अलग प्रकार के विस्थापनों को भी सामने लाया गया है जिन्हें आर्थिक विस्थापन कहा जाता है। आर्थिक विस्थापन वह स्थिति है जिसमें किसी व्यक्ति या समुदाय के रिहाईशी स्थान का शासन द्वारा अधिग्रहण नहीं किया जाता, परंतु उनकी आजीविका के संसाधन किसी अन्य प्रयोग के लिये छीन लिये जाते हैं। विशेष तौर पर जब भूमि का अधिग्रहण होने की वजह से किसी व्यक्ति या समुदाय की उस स्थान पर पाये जाने वाले संसाधनों पर पहुंच खत्म हो जाती है, तब इस स्थिति को आर्थिक विस्थापन माना जाता है।

आर्थिक विस्थापन की परिभाषा पहुंच (Access) पर निर्धारित परिभाषा है। इन दोनों परिभाषाओं को अगर मिला लिया जाए और तब विस्थापन के आंकड़ें जोड़े जाएं तो हर साल डेढ़ करोड़ से भी कहीं ज्यादा लोग इस समस्या से जूझते पाये जाएगें। आर्थिक विस्थापन के कई उदाहरण दिये जा सकते हैं। जब कोई बांध बांधा जाता है तो नदी का बहाव रोकने से बांध के नीचे रहने वाले मछुआरा समुदाय की

आजीविका जाती रहेगी। यह आर्थिक विस्थापन का एक उदाहरण माना जा सकता है।

इसी तरह जब भौतिक विस्थापितों को नई जगह पर बसाया जाता है, तो जिन समुदाओं के पास उनको बसाया जाता है (होस्ट कम्युनिटी या मेज़बान समुदाय) उनकी अपने संसाधनों की पहुंच कम हो जाती है। मेज़बान समुदाय का आजीविका के साधनों से वंचित होना भी एक प्रकार का आर्थिक विस्थापन माना जाता है, जिसे अब विश्व बैंक व अन्य संस्थाएं मुआवजे का पात्र मानती हैं।

मेरा शोध मध्य प्रदेश राज्य में श्योपुर जिले में है जो राजस्थान और मध्य प्रदेश के बार्डर का इलाका है। कूनो नदी (जो चम्बल की एक सहायक नदी है) के किनारे बसे हुए समुदाय के साथ मैं काम करती हूँ। यहाँ ज्यादातर सहरिया जन–जाति के लोग रहते हैं। इस लेख में मैं अपने दो शोध और उसमें से निकले हुए निष्कर्षों के बारे में बात करना चाहूंगी, जो विकास, विस्थापन और विकल्प के मुद्दों पर प्रकाश डाल सकते हैं।

मैंने अभी हाल ही में एक शोध पूरा किया है जिसमें श्योपुर के कूनो अभयारण्य से विस्थापन का मेज़बान या होस्ट कम्युनिटी के ऊपर क्या असर पड़ा, इस पर ध्यान दिया गया है।

अगर हम इसको समझने की कोशिश करें कि विस्थापन के प्रभाव क्या होते हैं और ये प्रभाव किन चीजों से निर्धारित होते है, तो हम तीन बड़े कारक देख सकते हैं। पहला कारक : जब कोई समुदाय एक जगह से दूसरी जगह जाता है तो वह अपनी पुरानी जगह पर क्या संसाधन छोड़ जाते हैं। दूसरा कारक : कुछ संसाधन लोग अपने साथ ले जाते हैं जैसे कि घर के सामान, दरवाजे, खिड़कियां, हुनर (जो नई आजीविका बनाने में मद्द करते हैं), आदि। छोड़े गये संसाधनों के बदले में लोगों को मुआवज़ा मिलता है। लैंड एक्वीज़िशन एक्ट के तहत जो संसाधन साथ नहीं जा सकते हैं, जिनको इस क़ानून के तहत ''इम्मूवेबलएसैट्स'' कहा जाता है, उनके बदले में मुआवज़ा मिलता है। जो संसाधन विस्थापित लोग बाहर ले जाते हैं, उन

संसाधनों की बाहर कितनी आवश्यकता है और उनको वह किस तरह से अपनी आजीविका में ढाल सकते हैं वह दूसरा कारक है। तीसरा कारक : नये स्थान पर शासन विस्थापितों को किस तरह के संसाधन उपलब्ध कराती है। यह रिहैबिलिटेशन पैकेज यानि कि पुनर्वास की पॉलिसी पर निर्भर करता है। मैंने अपने शोध में इन तीन कारकों पर ध्यान देने की कोशिश की है और यह समझने का प्रयास किया है कि किस तरह से यह तीन कारक जमीन पर उतारे जाते हैं।

अगर यह तीन कारक ही विस्थापन के असर को निर्धारित करते हैं, तो इनको मापना समाज शास्त्रियों और प्रोजेक्ट मैनेजर्स के लिए मुश्किल नहीं होना चाहिए। तो फिर सवाल यह है कि विस्थापन इतना बहस वाला मुद्दा क्यों बना? मेरे विचार में एक तो इसलिए क्योंकि यह मापन अक्सर किया ही नहीं जाता है, या बहुत सलीके से नहीं किया जाता है। परियोजना चलाने वाली संस्थाओं और जो लोग विस्थापितों का विरोध करने की कोशिश कर रहे हैं, उन दो पक्षों के बीच में बहस इसलिये भी है क्योंकि उनकी विकास की अवधारणा में काफी बड़ा विवाद है। यहाँ जिस बहस को मैं आपके सामने रखना चाहूँगी वह 'मैनेजर्स' यानि प्रबंधनकारी और आंदोलनवादियों यानि कि 'एक्टिविस्ट्स' के बीच में देख सकते हैं। उस बहस को न सिर्फ इन तीन कारकों से जोड़ा जाना चाहिए परंतु उनके विकास की अवधारणा से भी जोड़ा जाना चाहिए। आंदोलनवादी नजरिये के अनुसार विकास की अवधारणा, जिसके तहत विकास की परियोजनाएं लाई जाती हैं, जिसकी वजह से लोगों को अपनी जगह से निकाला जाता है, वह अवधारणा ही विनाशकारी है। आंदोलनवादी विचारधारा के अनुसार बीसवीं सदी में प्रचलित पूंजीवादी विकास की प्रक्रिया में लगातार गरीब और सीमांत लोगों की भूमि और संसाधनों के लिये होड़ लगी हुई है, जिसकी वजह से लोगों को विस्थापित किया जाता है। उनके अनुसार इसका परिणाम नकारात्मक ही हो सकता है, और अगर विकास की यही परिभाषा है तो लोगों की अटानॉमी यानि उनके स्वत्व का हरण इस प्रकार के विकास में होकर ही रहेगा।

दूसरी ओर प्रबंधनवादी लोगों, प्रोजेक्ट मैनेजर्स या सरकारी अफसरों के विचार में, विकास को उन्नति से जोड़ा जाता है। विकास की

अवधारणा पर सवालिया निशान नहीं लगाया जाता है, अपितु यह माना जाता है कि विकास की परियोजनाओं से होने वाले विस्थापन के नुकसान की भरपाई करने के लिए हस्तक्षेप जरूरी है। जो प्रबन्धनवादी नज़रिया है, उसमें विस्थापन के कुप्रभावों के मापन के बारे में कई तरह के शोध हुए हैं। कई तरह के फ्रेमवर्क्स, मॉडल्स (ढांचे) बनाये गये हैं जिसके द्वारा इस नुकसान को नापा जा सकता है। इनमें से सबसे प्रसिद्ध ढांचा जिसको विश्व बैंक, एडीबी और बहुत सारी परियोजनाओं को फंड करने वाली संस्थाएं इस्तेमाल करती हैं, वह माइकेल चर्निया का इम्पावरिशमेंट रिस्क्स एंड री–कंस्ट्रक्शन ढांचा कहलाता है। इस ढांचे के अनुसार जो समुदाय विस्थापित होते हैं उनको विस्थापन की वजह से कई प्रकार के निर्धनता संकट महसूस होते हैं। माइकल चर्निया के अनुसार विस्थापन से जुड़े निर्धनता संकटों में जमीन, घर व आजीविका का हनन, भुखमरी, बीमारी, एवं स्वावलंबिता का हनन प्रमुख हैं। उनका मानना है कि भौतिक एवं आर्थिक विस्थापन से होने वाले उन नुकसानों व निर्धनता–संकटों की सही समझ अत्यावश्यक है, और जितनी सटीक यह समझ होगी, उतना ही विस्थापन से जुड़ी समस्याओं का निराकरण आसान होगा। मौजूदा समय में विश्व बैंक व अन्य विकास परियोजनाओं के लिये पैसा देने वाली संस्थाएँ भी इस बात को मानती हैं, और परियोजनाओं की स्वीकृति करते समय इन विषयों पर ध्यान देने के लिये अनुबद्ध है।

प्रबंधनवादियों के हिसाब से निर्धनता संकटों से उभरना संभव है यदि हम विधान यानि कि लॉ, नीतियां (Policy) और विस्थापन की प्रक्रियाओं (Processes), और उससे होने वाले परिणामों (Results) के ऊपर ध्यान दें। प्रबंधनवादियों के हिसाब से विस्थापन से जो नुकसान होता है, इसको पहले से जांचा जा सकता है और परियोजना चलाने वालों के ऊपर यह ज़िम्मेदारी है कि वह इन नुकसानों की पूरी भरपाई करें। विस्थापन के विषय में पिछले 20–25 सालों में जो शोध हुए हैं, उनमें इस प्रकार के ढांचे को लेकर न सिर्फ भारत में परंतु बहुत सारे देशों में यह जानने की कोशिश की गई है कि निर्धनता संकट के विभिन्न पहलुओं पर किसी भी परियोजना से किस तरह के नुकसान होते हैं।

परन्तु यह ढांचा आंदोलनकारियों के अनुसार काफी नहीं है क्योंकि इस ढांचे में आठ ही तरह के नुकसान गिनाए जाते हैं। उनके अनुसार

विस्थापन से और भी बहुत सारे नुकसान लोगों को हो सकते हैं जिन को गिना नहीं जा सकता है। खास तौर से अमूर्त (Intagible) नुकसान, जैसे लोगों की परंपराओं का हनन, उनके मूल्यों में बदलाव, उनके अधिकारों का छिन जाना, पुनर्वास के पात्र नहीं माने जाने से कष्ट, उनके पारंपरिक ज्ञान का लुप्त होना–आईआरआर ढांचा इन सबके मापन के लिये अपर्याप्त है।

दूसरा और इससे भी ज्यादा ठोस मुद्दा यह है कि निर्धनता संकट अपने आप उत्पन्न नहीं होते हैं। निर्धनता संकट उत्पन्न होते हैं राजनीतिक कारणों से–वे वैश्विक आर्थिक प्रतिक्रियाएं जिसके संदर्भ में विस्थापन किये जा रहे हैं, चाहे वह वैश्वीकरण (Globalization) हो या सरकार की सामाजिक व आर्थिक नीतियां–उनके बारे में यह ढांचा कुछ नहीं बोलता है। आंदोलनवादी खेमे का आरोप है कि आईआरआर जैसा प्रबंधनवादी ढांचा विस्थापन के मूलभूत कारणों से नजर हटाकर समाज का ध्यान उससे उत्पन्न होने वाले पुनर्वास की प्रक्रिया पर केन्द्रित कर देता है। लेकिन विस्थापन के कारण क्या हैं, किसने इसे शुरू किया, क्यों किया, किसकी मरजी चली, किसकी बात नहीं सुनी गई, इस तरह के अनेक मुद्दों पर यह ढांचा ध्यान नहीं देता है। इसलिए वह इस समस्या को राजनीति से हटा कर प्रबन्धन की समस्या बना देता है, जबकि यह समस्या लोगों के हकों और राजनीति से जुड़ी हुई है।

सन् 1997 में विश्व बैंक और बांध बनाने वाली बड़ी संस्थाएं और बांध के खिलाफ काम करने वाले कुछ आंदोलनकारियों ने मिल कर विस्थापन के बारे में, विचार करने के लिये वर्ल्ड कमीशन आन डैम्स यानि कि विश्व बांध आयोग का गठन किया। विश्व बांध आयोग का उद्देश्य था बड़े बांधों से होने वाले सामाजिक, आर्थिक और पर्यावरण से जुड़े लाभ और हानि के विषय में निष्पक्ष रूप से विचार करना। यह एक नायाब पहल थी जहाँ पर प्रबंधनवादी और आंदोलनवादी गुटों के जाने माने विचारक एक साझा समझ बनाने की कोशिश कर रहे थे। इस आयोग ने अनेक देशों से बांधों द्वारा होने वाले भौतिक और आर्थिक विस्थापन के बारे में जानकारी जमा की और इसे जनता व शासन के सामने प्रस्तुत किया। इस आयोग द्वारा छापे गये दस्तावेज़ों ने विश्व स्तर पर विकास, विस्थापन और विकल्प के मुद्दे पर होने वाली

बहस का प्रारूप बदल दिया। उन्होंने कुछ बातें प्रबंधनवादियों की मानी जैसे कि उन्होंने माना की जरुरी नहीं है कि हर तरह की विकास परियोजनाएं हमेशा सीमांत समुदायों का नुकसान ही करें। लेकिन उन्होंने आंदोलनवादियों के इस विश्वास को भी स्वीकार किया कि विस्थापित लोगों को हक और भागीदारी मिलनी चाहिए और पुनर्वास की प्रक्रिया में उनके विचारों को ध्यान में लिया जाना चाहिए। पिछले दो दशकों में कई अन्य शोध भी हुए हैं जो विकास और विस्थापन को सदैव, परस्पर विरोधाभासी न मानते हुए प्रयत्न कर रहे हैं कि इन दोनों खेमों के बीच का कोई रास्ता निकाला जाए। इस विचारधारा के अनुसार शोध करने वाले लोग विकास की प्रक्रिया के विनाशकारी पहलू भी स्वीकार करते हैं, पर दूसरी तरफ यह भी मानते हैं कि विस्थापन के कुछ प्रभाव गरीब और सीमांत तबकों के लिए लाभप्रद भी हो सकते हैं। नर्मदा घाटी में हुए कुछ शोध जैसे कि अमिता बाविस्कर, रोक्सान हकीम व रंजीत द्विवेदी के कार्य इस प्रकार की सोच के प्रतीकात्मक हैं। मैं अपने कार्यक्षेत्र में पाती हूँ कि जो स्थिति जमीन पर है, और वहाँ से जो आंकड़े और जो समझ मिलती है, वह कुछ हद तक दोनों दृष्टिकोणों का समर्थन करती है। लेकिन कई ऐसी बातें भी दिखती हैं जिनकी वजह से विस्थापन और विकास के मुद्दे के पुर्नावलोकन की आवश्यकता महसूस होती है।

श्योपुर के कूनो अभयारण्य के विस्थापन के अपने शोध में मैंने तीन बिंदू पर विस्थापित लोगों की आजीविका का मापन किया। सबसे पहले मैंने जानना चाहा कि विस्थापन से पहले सहरिया आदिवासी समुदाय की, आमदनी कितनी थी। मैंने पाया कि *विस्थापन से पहले* लोग अपनी आमदनी कई अलग–अलग स्रोतों से पाते थे–खेती से, वन्य उपज को जमा करके और उसको बेच कर, और कुछ मजदूरी के द्वारा। एक आम सहरिया परिवार विस्थापन से पहले यानि 1995 से 1998 में औसतन 30–31 हजार रुपये सालाना कमा पाता था। विस्थापन के फौरन बाद जब हमने इन्हीं गतिविधियों से लोगों की आय के आंकलन की कोशिश की, तो पाया कि विस्थापन के बाद उनकी खेती तो लगभग बर्बाद हो गई। जहां एक परिवार औसतन छह हजार रुपये खेती से कमाता था, पुनर्वास के बाद वहां खेती की वार्षिक आय एक हजार रुपये के करीब हो गई। कई परिवार ऐसे पाये गये जो खेती में कमाने के बजाय

पैसे गवां रहे थे। कूनो अभयारण्य मे सहरिया आदिवासी कई तरह के वन उपज जमा करके बेचा करते थे, और 20–21 हजार रुपये साल में कमा लिया करते थे, जबकि विस्थापन के तुरंत बाद वनोपज से होने वाली कमाई लगभग 1400 रूपये प्रतिवर्ष ही रह गई। इन दोनों कारणों से विस्थापित परिवारों की मजदूरी पर निर्भरता बढ़ गई । जब मैंने अपनी पीएचडी थीसिस लिखी थी तो मुझे कोई संकोच नहीं हुआ था यह कहने में कि आंदोलनवादी जो बात कहते हैं वह सच है । लोगों की कुल आय विस्थापन के बाद घट गई; विस्थापन की वजह से उनकी खेती बर्बाद हो गई, उनको जंगल से जो चीजें मिलती थीं, वह अब नहीं मिलती हैं और वह लोग स्वावलम्बी किसान के बजाय मजदूर बन गये। सारे तथ्य आंदोलनवादियों के कथनानुसार विकास और पर्यावरण संरक्षण के नाम पर हो रहे विनाश और अन्याय की ओर इशारा कर रहे थे, ऐसा मेरे अपने शोध से भी निकल कर आ रहा था। परंतु मेरे हाल के शोध के परिणामों ने मुझे अपने इस विश्वास पर दोबारा विचार करने को प्रेरित किया है। अमूमन विस्थापन पर हुए शोध लोगों को हटाने के दौरान या उसके कुछ ही समय बाद किये जाते हैं। विस्थापित समुदायों की आजीविका के पुनर्निर्माण पर सिर्फ इक्का–दुक्का ही दीर्घकालिक शोध मौजूद हैं। इसी को ध्यान में रखते हुए मैंने 2012 में कूनो अभयारण्य से विस्थापित 24 गांवों का पुर्नसर्वेक्षण किया, जिसमें काफ़ी हैरतअंगेज़ आंकड़े नज़र आये। मैंने पाया कि विस्थापन के बाद जिस समुदाय की खेती बिलकुल बर्बाद हो गई थी, उनकी खेती अब वापिस जमने लगी है और वे औसतन लगभग 19 हजार रुपये सालाना खेती से कमाने लगे हैं, हालांकि इस दौरान अनाज और अन्य वस्तुओं के दाम भी बढ़ गए हैं। पुरानी खेती से उनकी औसत आमदनी तीन गुना ज्यादा है। हालांकि यह लोग जंगल से दूर आकर बसे हैं, लेकिन कुछ वनोत्पाद जो जंगलों में नहीं पाये जाते हैं, लेकिन खुले मैदानों में पाये जाते हैं (जैसा बेर, धौली, बिलैया) उनको वह अभी भी जमा करते हैं और उनको बेचते हैं इससे मिलने वाली औसत आय वर्ष 2012 में लगभग चार हजार रुपये के करीब है। इसके साथ मैंने पाया कि उनकी मजदूरी पर निर्भरता भी बढ़ गई है। लेकिन इसको मजबूरी की तरह भी देखा जा सकता है और एक मौके की तरह भी देखा जा सकता है, क्योंकि अब वह सड़क के करीब हैं, और मजदूरी के लिए दूर क्षेत्रों में जा सकते हैं। मजदूरी से पहले

जहाँ एक परिवार औसत तीन हजार रुपये कमा पाता था, अब औसतन साढ़े नौ हजार रुपये कमा पा रहा हैं। कुल मिलाकर मैंने पाया कि विस्थापन से पहले जितनी आमदनी लोगों की होती थी, औसत पारिवारिक आय आज की तारीख में शायद उससे थोड़ी बढ़ ही गई है। इससे हम क्या यह मानें कि विस्थापन से होने वाला नुकसान एक अस्थायी नुकसान है, जिसकी समय के साथ भरपाई की जा सकती है ?

हमारे शोध में उभरी दूसरी चीज और भी चौंकाने वाली है। कुल आमदनी को देखने के अलावा हमने प्रयत्न किया कि आमदनी को हम बांट के देखें कि यह अमीर आदमी के पास जा रही है कि गरीब के पास जा रही है। समुदाय के बीच में इस आय का बंटवारा किस तरह से हो रहा है, यह जानने के लिए हमने कोशिश की है। हमने लोगों को आय के हिसाब से 4 हिस्सों में बांटा और जानने की कोशिश की कि विस्थापन के पहले, विस्थापन के फौरन बाद और विस्थापन के दस साल बाद इन चारों समूहों की औसत आय पर क्या प्रभाव हुआ। हमने पाया कि विस्थापन का प्रभाव गरीब और अमीर पर बहुत अलग–अलग प्रकार से पड़ता है। हर विस्थापित व्यक्ति न तो नुकसान खाता है और न ही हर विस्थापित फायदा ले पाता है, यानि कि विस्थापन का और पुनर्वास का पथ अलग–अलग लोगों के लिए अलग–अलग है, और सभी समूह एक ही रास्ते का अनुगमन नहीं कर रहे हैं। इस क्षेत्र मे जो प्रभावशाली और सब से ज्यादा सक्षम लोग हैं वे जब सैंक्चुअरी के अंदर रहते थे, तो उनकी औसत आय अस्सी हजार रुपये के करीब थी जबकि औसत आय 31 हजार रुपये थी। जब विस्थापन हुआ तो सक्षम समूहों की औसत आय घट कर 20 हजार रुपये से भी कम आ गई। इससे यह पता चलता है कि सब से अमीर आदमी को भी विस्थापन से काफी नुकसान हुआ। लेकिन विस्थापन के बाद उन्होंने धीरे–धीरे अगले दस सालों में अपनी स्थिति को वापस सुदृढ़ कर लिया, और अब उनकी आय शायद जब वह कूनो अभयारण्य में रहते थे, उससे कहीं ज्यादा है। दूसरी तरफ यदि हम सब से गरीब समुदाय को देखें तो कहानी अलग हो जाती है और हम पाते है कि विस्थापन के पहले भी उनकी आमदनी बहुत कम थी। विस्थापन की वजह से उन्होंने काफी चोट खाई, जिससे वह अब तक उभरे नही हैं। लेकिन हमने यह भी पाया कि जो बीच के 50 प्रतिशत लोग हैं, विस्थापन

के बाद धीरे–धीरे उनकी आजीविका वापस जमनी शुरु हुई है और उनकी औसत आय में कुछ लाभ हुआ है। इसमें अभी और शोध की जरूरत है कि किन कारणों से कुछ लोग ऊपर उठ पाये। यह देखना भी बाकी है कि मंहगाई बढ़ने के साथ यह लाभ कितना टिक पायेगा।

इन दीर्घकालिक परिणामों के माध्यम से हम आंदोलनवादी व प्रबंधनवादी विचारधारा के बीच कुछ हद तक सामंजस्य बैठाने की स्थिति में आ सकते हैं। दोनों परिप्रेक्ष्यों में परस्पर विरोधाभास होने के बाद भी हम पाते हैं कि ज़मीनी तथ्य हमें इन दोनों नज़रियों से आगे बढ़कर कुछ नए सवालों से जूझने को प्रेरित करते हैं। उदाहरण के तौर पर, यह देखना आवश्यक है कि जो परिवार न तो सक्षम/अमीर की गिनती में आते हैं और न ही बिलकुल गरीब/सीमांत माने जा सकते हैं, उनकी आजीविका के लिये भौतिक विस्थापन किस प्रकार के संकट (Risk) और मौके (Opportunity) पैदा करता है ? इनमें से कौन अपनी स्थिति को सुधार पाते है (और क्यों?), और किनकी स्थिति पहले से बदतर हो जाती है (और क्यो?)। इन परिणामों के पीछे कौन से कारक आक्स्मिक हैं, और कौन से कारक सामाजिक व राजनीतिक परिवेश से अंतरंग रूप से जुड़े हैं? इन कारकों को देखते हुए विस्थापन और विकास से जुड़े क़ानूनों, प्रक्रियाओं और नीतियों में किस प्रकार के सकारात्मक परिवर्तन किये जा सकते हैं ?

चंबल के ही गांवों में किया गया मेरा दूसरा शोध भी लगभग इन्हीं मुद्दों से जूझता है। वर्ष 2010–11 में किया गया यह शोध कूनो के विस्थापित गांवों के मेज़बान समुदाय पर किया गया था। अगरा नामक गांव के आसपास लाकर कूनो के 24 गांव बसाये गये। जब इन 24 गांवों को यहां लाकर बसाया गया तो अगरा–वासियों के आमदनी के स्रोत एकदम से घट गये, क्योंकि उनके आसपास का जंगल खेतों में परिवर्तित हो गया। मेज़बान समुदाय का आर्थिक विस्थापन हुआ, क्योंकि औसतन उनके प्राकृतिक संसाधनों में काफी कमी आई। लेकिन अगर हम इस प्रक्रिया को भी हिस्सों में बांट कर देखें तो हम पाते हैं कि ग्राम अगरा के आदिवासी परिवारों में सब के ऊपर आर्थिक विस्थापन का असर एक जैसा नहीं है। कूनो के गांवों के आने की वजह से अगरा की जनसंख्या बढ़ गई, और गांव में सड़कें, मोबाइल फोन, नये

स्कूल और कई अन्य सुविधाएं आईं। अगरा के कुछ लोगों ने इन नये संसाधनों के माध्यम से अपनी आय के साधन बढ़ाये, लेकिन कई और लोग थे जिनकी आजीविका पर नकारात्मक असर पड़ा। अगरा में अलग–अलग तरह के समाज के लोग रहते हैं, जैसे कि आदिवासी, हरिजन, ब्राह्मण, बनिये, कुशवाहा इत्यादि। मेरा शोध दर्शाता है कि अगरा में विस्थापन से अधिकतर लोगों को नुकसान हुआ है, लेकिन फिर भी कई लोग जिन्होंने इससे फायदा उठा कर अपना आगे का रास्ता निकाल लिया है। कूनो अभयारण्य के गांवों के बाहर आने से पहले अगरा गांव के लोगों की आजीविका भी खेती, वनोपज संचय, मवेशी पालन व मजदूरी से मुख्यतः जुड़ी थी। कूनो विस्थापन के बाद अगरा के लोगों की आजीविका में बहुत बड़े पैमाने पर बदलाव हुआ है। सबसे अधिक नुकसान वनोपज संचय को हुआ है, क्योंकि गांव के आसपास के जंगल को काट कर कूनो विस्थापितों को रिहायश व खेती के लिये जमीन आवंटित कर दी गई। दूसरा प्रमुख असर मवेशी पालन पर पड़ा क्योंकि यह जंगल ही अगरा के मवेशियों के लिये चारागाह का काम देते थे।

आदिवासियों और हरिजनों में ज्यादातर लोग पहले कम–से–कम चार या पांच गाय–बैल घरों में रखते थे, क्योंकि आसपास जंगल था और मवेशी को आराम से चारा मिल जाता था। आज की तारीख में अधिकतर परिवारों के पास कोई भी मवेशी नही है। सीमांत मवेशी पालकों की संख्या में काफी कमी आई लेकिन हमने यह भी पाया कि कुछ आदिवासी परिवारों ने मवेशी पालन को अपना विशेषज्ञ कार्य बना लिया और वह अपने मवेशी आज भी दूर के जंगल में ले जाते हैं, जबकि उनको जंगल में जाने की शासकीय इज़ाज़त नहीं है। हमने यह भी पाया कि कुछ ऐसे समुदाय जो कभी भी मवेशी पालन नहीं किया करते थे वे अब इस आजीविका पर निर्भर हो गए हैं। अगरा के ब्राह्मण परिवार मवेशी पालन नहीं करते थे, लेकिन अब उनमें से दो या तीन परिवार ऐसे हैं जो बड़ी तादाद में भैंसे रखते हैं। उन्होंने भैसों के अस्थायी खेमे (जिसको खिरकाई कहा जाता है) आसपास के रिज़र्व फारेस्ट में बना लिये हैं। उनको ऐसा करने के लिए शासकीय इज़ाज़त तो नही है, मगर वन विभाग के निचले कर्मियों के साथ सामंजस्य बना कर उन्होंने ऐसा कर लिया है। इस तरह हमने पाया कि मवेशी पालन पूरी तरह लुप्त

नहीं हुआ है, परंतु अगरा के अधिकतर परिवारों के लिये चारे की कमी से निर्धनता–संकट बढ़ा है। दूसरी ओर वन विभाग से जान–पहचान रखने वाले चंद परिवारों ने इस मौके का फायदा उठा कर इससे मवेशी पालन से होने वाली आय को सुदृढ़ कर लिया है। यही स्थिति व्यापार व दुकानदारी में पायी गई। अगरा गांव में सड़क व बिजली आने व आस–पास के क्षेत्र की जनसंख्या बढ़ने से व्यापार की संभावनाएं पहले से सुधरी, परंतु इसका लाभ भी ज्यादातर पहले से सक्षम परिवारों ने उठाया। परंतु कुछ निचले व सीमांत परिवार भी अब व्यापार करते है। अगरा, जिसमें तीन या चार दुकानें हुआ करती थी, एक काफी बड़ा बाजार है जो पूरे विस्थापित समुदाय के काम आता है।

विस्थापन से होने वाले अलग–अलग तरह के बदलावों को समझने के लिए मेरे विचार में एक वैकल्पिक मॉडल की जरूरत है। प्रबंधनवादी मानते है कि विस्थापन से नुकसान होता है और अच्छी नीतियों से उसकी भरपाई की जा सकती है। आंदोलनवादियों के अनुसार विस्थापन से पहले सब कुछ अच्छा था, और इसकी वजह से लोगों को नुकसान ही हुआ है। मेरे विचार से इन दोनों दृष्टिकोणों से सीखते हुए वैकल्पिक नज़रिये ढूंढने होंगे।

निष्कर्ष

मैंने जिन दो शोध कार्यो के बारे में बताया उनके द्वारा अंत में मैं विस्थापन, विकास और विकल्प को समझने के लिये एक वैकल्पिक ढांचे का जिक्र करना चाहूंगी। यह 2011 की एक पुस्तक *पॉवर्स ऑफ इक्सक्लूजन : लैंड डिलेमाज़ इन साउथ–ईस्ट एशिया* पर आधारित है, जिसे डेरेक हॉल, फिलिप हिर्ष और तानिया मरे–ली ने लिखा है। इनके अनुसार भौतिक व आर्थिक विस्थापन दोनों ही का आधार है 'भूमि के वर्तमान प्रयोग में फेर–बदल' (लेंड यूज चेंज), जो शासन या बाजार द्वारा लाया जा सकता है। जब भी भूमि के प्रयोग में फेर–बदल होता है, तो इसकी वजह से कुछ लोगों/समुदायों/आजीविकाओं को नुकसान होगा क्योंकि उनके संसाधन अन्य लोगों/समुदायों/आजीविकाओं के लिये छीन लिये जाते हैं। अतः कुछ लोगों का अपने संसाधनों से निष्कासन (Exclusion) अन्य लोगों के लिये संसाधनों की पहुंच (Access) को

बढ़ाता है। सवाल यह है कि किस समूह का नुकसान और किस का फायदा होता है। इन विचारकों के अनुसार इस लाभ हानि को कम–से–कम तीन दर्जों (Scales) पर देखने की आवश्यकता हैं। पहला दर्जा है अंतर्राष्ट्रीय, जहां विकसित देशों और विकासशील देशों के बीच भूमि और संसाधनों के बंटवारे के बारे में बहस होती है जैसे कि नव–भूमंडलीकरण (Neo-Imperialism)। दूसरा दर्जा या स्केल राष्ट्रीय है, जहाँ बहस शहरी बनाम–ग्रामीण या फिर उद्योग बनाम – कृषि के बीच देखी गई है। भूमि और संसाधनों पर स्वामित्व की यह बहस तीसरे दर्जे (Scale) पर प्रांतीय या उससे भी छोटे पैमाने पर देखी जा सकती है, जहाँ संसाधनों पर पहुंच की होड़ दलित/आदिवासी/महिला/मजदूर/गरीब–बनाम–उच्च जातियों/बड़े किसान/पुरुष/अमीर के बीच है।

मेरे विचार में आंदोलनवादी विस्थापन और विकास की बहस में पहले दो दर्जों (यानी अंतर्राष्ट्रीय एवं राष्ट्रीय दर्जों) को अत्याधिक महत्व देते हैं, जो कि अपने आप में आवश्यक तो है, परंतु जमीन पर दिखने वाले सभी तथ्यों को पूरी तरह से समझने के लिये अपर्याप्त है। जमीनी शोध दर्शाता है कि प्रांतीय या ग्राम या परिवार के स्तर पर विस्थापन की प्रक्रिया एक ओर निर्धनता–संकट को जन्म देती है, तो दूसरी ओर यही प्रक्रिया कुछ समुदायों/समूहों/व्यक्तियों के लिये सम्पन्नता के अवसरों को भी जन्म देती है। इससे यह सवाल प्रमुख है कि किस प्रकार से सम्पन्नता के अवसरों को बढ़ावा दिया जा सकता है और निर्धनता संकट से जूझने के लिये गरीब व कमजोर वर्गों को सक्षम किया जा सकता है। दूसरा प्रमुख सवाल यह है कि किस हद तक सम्पन्नता के अवसरों को बढ़ावा देने की नीतियां और नियम सचमुच सीमांत वर्गों तक पहुंच पाएंगी, और किन स्थितियों में इनका लाभ भी परिवार/ग्राम/प्रांत के स्तर पर पहले से सक्षम और दमदार समूह हड़प लेंगे। मेरे शोध से यह उभर कर आता है कि इन सवालों का कोई एक सीधा उत्तर नहीं है और विस्थापन के परिणाम जब सामने आते हैं तो इनमें जाति, वर्ग और शक्ति के साथ–साथ कुछ आक्स्मिक और स्थल विशिष्ट (Site-Specific) कारकों का प्रभाव भी महत्वपूर्ण है। इन कारकों पर आगे और शोध की गहन आवश्यकता है, और ऐसे शोध कार्य से ही विकास की वैकल्पिक अवधारणाओं पर और प्रकाश डाला जा सकता है।

संदर्भ

1. अमिता बाविस्कर, इन दि बेलि ऑफ दि रिवर, नई दिल्ली : ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस

2. एम. एम. चर्निया (2000), रिसक्स, सेफगॉर्डस ऐण्ड रीकांस्ट्रक्शन : ए मॉडल फॉर पॉपुलेशन डिस्प्लेसमेंट ऐण्ड रिसेटलमेंट। एम. एम. चर्निया एवं सी. मैक्डोवेल द्वारा संपादित–रिसक्स ऐण्ड रीकांस्ट्रक्शन : एक्सपीरिऐसिंज ऑफ रीसेटलर्स ऐण्ड रेफ्यूज़ीज़ (पृष्ठ 11–55) वाशिंगटन डीसी : विश्व बैंक।

3. रंजीत द्विवेदी (1999) डिस्प्लेसमेंट, रिसक्स ऐण्ड रिजीस्टेंस : लोकल परसेप्शॅन ऐण्ड ऐक्शन इन दि सरदार सरोवर, डिवलेपमेंट ऐण्ड चेंज 30 (1), 43–78।

4. आर. हाकिम–फ्रॉम कॉर्न टू कॉटन : चेजिंग इंडिकेटर्स ऑफ फूड सिक्योरिटी अमंग रीसेटिल्ड वासा : इन एम. एम. चर्निया तथा मैकडोवेल, सी. रिसक्स ऐण्ड रीकांस्ट्रक्शन : एक्सपीरिऐसिंज ऑफ रीसेटलर्स ऐण्ड रिफ्यूज़ीज़ (पृष्ठ 229–252) वाशिंगटन, डीसी : विश्व बैंक।

5. डेरेक हॉल, फिलिप हिर्ष ऐण्ड तानिया मुरे ली (2011) पॉवर्स ऑफ एक्सक्लूजन : लैंड डिलेमाज़ इन साउथ ईस्ट एशिया। होनोलूलु : हवाई प्रेस विश्वविद्यालय।

6. अस्मिता काबरा (2003) डिस्प्लेसमेंट ऐण्ड रीहैबिलेशन ऑफ एन आदिवासी सेटलमेंट : कूनो वन्यजीव अभयारण्य, मध्य प्रदेश का केस। इकॉनामिक ऐण्ड पॉलिटिक्ल साप्ताहिक 38 (29), 3073–3087।

7. अस्मिता काबरा (2008) डिस्प्लेसमेंट फ्रॉम वाइल्डलाईफ प्रोटेक्टिड एरियाज ऐण्ड इट्स इम्पैक्ट ऑन पावरिटी ऐण्ड लाइवलीहुड सिक्योरिटी, नई दिल्ली। पीएचडी थीसिस, सेंटर फॉर इकॉनामिक स्टडीज़ ऐण्ड प्लानिंग, स्कूल ऑफ सोशल साईसिंज, जवाहरलाल नेहरु विश्वविद्यालय।

8. अस्मिता काबरा (2013) ''कंजरवेशन–इंडयुस्ड डिस्प्लेसमेंट : दि ऐनाटॉमि ऑफ ए विन-विन सॅल्यूशॅन सोशल चेंज 2013, 43 : 533–550।

9. डब्ल्यूसीडी (2000), डैम्स ऐण्ड डिवेलपमेंट ए न्यु फ्रेमवर्क फॉर डिसीजन–मेकिंग–रिपोर्ट ऑफ दि वर्ल्ड कमीशन ऑन डैम्स। लंदन और स्टर्लिंग, वी ए : अर्थस्कैन प्रकाशन।

10. विश्व बैंक (1994) रीसेटलमेंट ऐण्ड डिवेलपमेंट : दि बैंक वाइड रिव्यु ऑफ प्रोजेक्ट्स इंवॉलिंग इंवॉलॅन्टॅरि रीसेटलमेंट 1986–1993 वाशिंगटन डीसी पर्यावरण विभाग, इंटरनेशनल बैंक फॉर रीकांस्ट्रक्शन ऐण्ड डिवेलपमेंट।